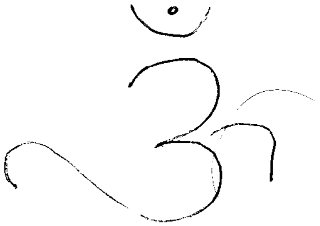

अध्याय - २६

(१) भक्त पन्त (२) हरिश्चंद्र पितले और (3) गोपाल आंबडेकर की कथाएँ।

इस सृष्टि में स्थूल, सूक्ष्म, चेतन और जड़ आदि जो कुछ दृष्टिगोचर हो रहा है, वह सब एक ब्रह्म है और इसी एक अद्वितीय वस्तु ब्रह्म को ही हम भिन्न-भिन्न नामों से सम्बोधित करते तथा भिन्न-भिन्न दृष्टियों से देखते हैं। जिस प्रकार अँधेरे में पड़ी हुई एक रस्सी या हार को हम भ्रमवश सर्प समझ लेते हैं; उसी प्रकार हम समस्त पदार्थों के केवल बाह्य स्वरूप को ही देखते हैं, न कि उनके सत्य स्वरूप को। एकमात्र सद्‌गुरु ही हमारी दृष्टि से माया का आवरण दूर कर हमें वस्तुओं के सत्यस्वरूप का यथार्थ में दर्शन करा देने में समर्थ हैं। इसलिये आओ, हम श्री सद्‌गुरु साईमहाराज की उपासना कर उनसे सत्य का दर्शन कराने की प्रार्थना करें, जो कि ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हैं।

आन्तरिक पूजन

श्री. हेमाडपंत उपासना की एक सर्वथा नवीन पद्धति बताते हैं। वे कहते हैं कि सद्‌गुरु के पादप्रक्षालन के निमित्त आनन्द-अश्रु के उष्ण जल का प्रयोग करो। उन्हें सत्यप्रेमरूपी चन्दन का लेप कर, दृढ़विश्वासरूपी वस्त्र पहिनाओ तथा अष्ट सात्विक भावों के स्थान पर कोमल और एकाग्र चित्तरूपी फल उन्हें अर्पित करो। भावरूपी बुक्का उनके श्री मस्तक पर लगा, भक्ति की कछनी बाँध, अपना मस्तक उनके चरणों पर रखो। इस प्रकार श्री साई को समस्त आभूषणों से विभूषित कर, उन्हें अपना सर्वस्व निछावर कर दो। उष्णता दूर करने के लिये भाव की सदा चँवर डुलाओ। इस प्रकार आनन्ददायक पूजन कर उनसे प्रार्थना करो —

"हे प्रभु साई! हमारी प्रवृत्ति अन्तर्मुखी बना दो। सत्य और असत्य का विवेक दो तथा सांसारिक पदार्थों से आसक्ति दूर कर हमें आत्मानुभूति प्रदान करो। हम अपनी काया और प्राण आपके श्री चरणों में अर्पित करते हैं। हे प्रभु साई! मेरे नेत्रों को तुम

अपने नेत्र बना लो, ताकि हमें सुख और दुःख का अनुभव ही न हो। हे साई! मेरे शरीर और मन को तुम अपनी इच्छानुकूल चलने दो तथा मेरे चंचल मन को अपने चरणों की शीतल छाया में विश्राम करने दो।"

अब हम इस अध्याय की कथाओं की ओर आते हैं।

भक्त पन्त

एक समय एक भक्त, जिनका नाम पंत था और जो एक अन्य सद्गुरु के शिष्य थे, उन्हें शिरडी पधारने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनकी शिरडी आने की इच्छा तो न थी, परन्तु "मेरे मन कछु और है, विधिना के कुछ और" वाली कहावत चरितार्थ हुई। वे रेल (पश्चिम रेल्वे) द्वारा यात्रा कर रहे थे, जहाँ उनके बहुत से मित्र व सम्बन्धियों से अचानक ही भेंट हो गई, जो कि शिरडी यात्रा को ही जा रहे थे। उन लोगों ने उनसे शिरडी तक साथ-साथ चलने का प्रस्ताव किया। पंत यह प्रस्ताव अस्वीकार न कर सके। तब वे सब लोग बम्बई में उतरे और इसी बीच पन्त विरार में उतर अपने सद्गुरु से शिरडी प्रस्थान करने की अनुमति ले कर तथा आवश्यक खर्च आदि का प्रबन्ध कर, सब लोगों के साथ रवाना हो गये। वे प्रातःकाल वहाँ पहुँच गये और लगभग ११ बजे मसजिद को गये। वहाँ पूजनार्थ भक्तों का एकत्रित समुदाय देख सब को अति प्रसन्नता हुई, परन्तु पन्त को अचानक ही मूर्च्छा आ गई और वे बेसुध होकर वहीं गिर पड़े। तब सब लोग भयभीत होकर उन्हें स्वस्थ करने के समस्त उपचार करने लगे। बाबा की कृपा से और मस्तक पर जल के छींटे देने से वे स्वस्थ हो गये और ऐसे उठ बैठे, जैसे कि कोई नींद से जगा हो। त्रिकालज्ञ बाबा ने यह सब जानकर कि यह अन्य गुरु का शिष्य है, उन्हें अभय-दान देकर उनके गुरु में ही उनके विश्वास को दृढ़ करते हुए कहा कि "कैसे भी आओ, परन्तु भूलो नहीं, अपने ही स्तंभ को दृढ़तापूर्वक पकड़कर सदैव स्थिर हो उनसे अभिन्नता प्राप्त करो।" पन्त तुरन्त इन शब्दों का आशय समझ गये और उन्हें उसी समय अपने सद्गुरु की स्मृति हो आई। उन्हें बाबा के इस अनुग्रह की जीवन भर स्मृति बनी रही।

श्री. हरिश्चन्द्र पितले

बम्बई में एक श्री. हरिश्चन्द्र पितले नामक सद्गृहस्थ थे। उनका पुत्र मिर्गी रोग से पीड़ित था। उन्होंने अनेक प्रकार की देशी व विदेशी चिकित्सायें कराईं, परन्तु उनसे कोई लाभ न हुआ। अब केवल यही उपाय शेष रह गया था कि किसी सन्त के चरण-कमलों

की शरण ली जाय। १५ वें अध्याय में बतलाया जा चुका है कि श्री. दासगणू के सुमधुर कीर्तन से श्री साईबाबा की कीर्त्ति बम्बई में अधिक फैल चुकी थी। पितले ने भी सन् १९१० में उनका कीर्तन सुना और उन्हें ज्ञात हुआ कि श्री साईबाबा के केवल कर-स्पर्श तथा दृष्टिमात्र से ही असाध्य रोग समूल नष्ट हो जाते हैं। तब उनके मन में भी श्री साईबाबा के प्रिय दर्शन की तीव्र इच्छा जागृत हुई। यात्रा का प्रबन्ध कर भेंट देने को फलों की टोकरी लेकर स्त्री और बच्चों सहित वे शिरडी पधारे। मसजिद पहुँचकर उन्होंने चरण-वंदना की तथा अपने रोगी पुत्र को उनके श्री-चरणों में डाल दिया। बाबा की दृष्टि उस पर पड़ते ही उसमें एक विचित्र परिवर्तन हो गया। बच्चे ने आँखें फेर दीं और बेसुध हो कर गिर पड़ा। उसके मुँह से झाग निकलने लगी तथा शरीर पसीने से भींग गया और ऐसी आशंका होने लगी कि अब उसके प्राण निकलने ही वाले हैं। यह देखकर उसके माता-पिता अत्यंत निराश होकर घबड़ाने लगे। बच्चे को बहुधा थोड़ी मूर्च्छा तो अवश्य आ जाया करती थी, परन्तु यह मूर्च्छा दीर्घ काल तक रही। माता की आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी और वह दुःखग्रसित हो आर्त्तनाद करने लगी कि मैं ऐसी स्थिति में हूँ, जैसे कि एक व्यक्ति, चोरों के डर से भाग कर किसी घर में प्रविष्ट हो जाय और वह घर ही उसके ऊपर गिर पड़े; या एक भक्त मन्दिर में पूजन के लिये जाय और वह मन्दिर ही उसके ऊपर गिर पड़े या एक गाय शेर के डर से भागकर किसी कसाई के हाथ लग जाय; या एक स्त्री सूर्य के ताप से व्यथित होकर वृक्ष की छाया में जाये और वह वृक्ष ही उसके ऊपर गिर पड़े। तब बाबा ने सान्त्वना देते हुये कहा कि "इस प्रकार प्रलाप न कर, धैर्य धारण करो। बच्चे को अपने निवासस्थान पर ले जाओ। वह आधा घण्टे के पश्चात् ही होश में आ जायेगा।" तब उन्होंने बाबा के आदेश का तुरन्त पालन किया। बाबा के वचन सत्य निकले। जैसे ही उसे वाड़े में लाये कि बच्चा स्वस्थ हो गया और पितले परिवार - पति, पत्नी व अन्य सब लोगों को महान् हर्ष हुआ और उनका सन्देह दूर हो गया। श्री. पितले अपनी धर्मपत्नी सहित बाबा के दर्शनों को आये और अति विनम्र होकर आदरपूर्वक चरण-वन्दना कर पादसेवन करने लगे। मन ही मन वे बाबा को धन्यवाद दे रहे थे। तब बाबा ने मुस्कराकर कहा कि "क्या तुम्हारे समस्त विचार और शंकायें मिट गईं? जिन्हें विश्वास और धैर्य है, उनकी रक्षा श्री हरि अवश्य करेंगे।" श्री. पितले एक धनाढ्य व्यक्ति थे, इसलिये उन्होंने अधिक मात्रा में मिठाई बाँटी और उत्तम फल तथा पान बीड़े बाबा को भेंट किये। श्रीमती पितले सात्विक वृत्ति की महिला थीं। वे एक स्थान पर बैठकर बाबा की ओर प्रेमपूर्ण दृष्टि से निहारा करती थीं। उनकी आँखों से प्रसन्नता के

आँसू गिरते थे। उनका मृदु और सरल स्वभाव देखकर बाबा अति प्रसन्न हुए। ईश्वर के समान ही सन्त भी भक्तों के अधीन हैं। जो उनकी शरण में जाकर उनका अनन्य भाव से पूजन करते हैं, उनकी रक्षा सन्त करते हैं। शिरडी में कुछ दिन सुखपूर्वक व्यतीत कर पितले परिवार बाबा के समीप मसजिद में गया और चरण-वन्दना कर शिरडी से प्रस्थान करने की अनुमति माँगी। बाबा ने उन्हें उदी देकर आशीर्वाद दिया। पितले को पास बुलाकर वे कहने लगे "बापू! पहले मैंने तुम्हें दो रुपये दिये थे और अब मैं तुम्हें तीन रुपये देता हूँ। इन्हें अपने पूजन में रखकर नित्य इनका पूजन करो। इससे तुम्हारा कल्याण होगा।" श्री. पितले ने उन्हें प्रसादस्वरूप ग्रहण कर, बाबा को पुनः साष्टांग नमस्कार किया तथा आशीष के लिये प्रार्थना की। उन्हें एक विचार भी आया कि प्रथम अवसर होने के कारण मैं इसका अर्थ समझने में असमर्थ हूँ कि दो रुपये मुझे पहले कब दिये थे?

वे इस बात का स्पष्टीकरण चाहते थे, परन्तु बाबा मौन ही रहे। बम्बई पहुँचने पर उन्होंने अपनी वृद्ध माता को शिरडी की विस्तृत वार्त्ता सुनाई और उन दो रुपयों की समस्या भी उनसे कही। उनकी माता को भी पहले-पहल तो कुछ समझ में न आया, परन्तु पूरी तरह विचार करने पर उन्हें एक पुरातन घटना की स्मृति हो आई, जिसने यह समस्या हल कर दी। उनकी वृद्ध माता कहने लगीं कि "जिस प्रकार तुम अपने पुत्र को लेकर श्री साईबाबा के दर्शनार्थ गये थे, ठीक उसी प्रकार तुम्हें लेकर तुम्हारे पिता अनेक वर्षों पहले अक्कलकोटकर महाराज के दर्शनार्थ गये थे। महाराज पूर्ण सिद्ध, योगी, त्रिकालज्ञ और बड़े उदार थे। तुम्हारे पिता परम भक्त थे। इस कारण उनकी पूजा स्वीकार हुई। तब महाराज ने उन्हें पूजनार्थ दो रुपये दिये थे, जिनकी उन्होंने जीवनपर्यन्त पूजा की। उनके पश्चात् उनकी पूजा यथाविधि न हो सकी और वे रुपये खो गये। कुछ दिनों के उपरान्त उनकी पूर्ण विस्मृति भी हो गई। तुम्हारा सौभाग्य है, जो श्री अक्कलकोटकर महाराज ने साईस्वरूप में तुम्हें अपने कर्त्तव्यों और पूजन की स्मृति कराकर आपत्तियों से मुक्त कर दिया है। अब भविष्य में जागरूक रहकर समस्त शंकाएँ और सोच विचार छोड़कर अपने पूर्वजों को स्मरण कर रिवाजों का अनुसरण कर, उत्तम प्रकार का आचरण अपनाओ। अपने कुलदेव तथा इन रुपयों की पूजा कर उनके यथार्थ स्वरूप को समझो और सन्तों का आशीर्वाद ग्रहण करने में गर्व मानो। श्री साई समर्थ ने दया कर तुम्हारे हृदय में भक्ति का बीजारोपण कर दिया है और अब तुम्हारा कर्त्तव्य है कि तुम उसकी वृद्धि करो।" माता के मधुर वचनामृत का पान कर श्री. पितले को अत्यन्त हर्ष हुआ। उन्हें बाबा की सर्वकालज्ञता विदित हो गई और उनके श्री दर्शन का भी महत्व ज्ञात हो गया। इसके पश्चात् वे अपने व्यवहार में अधिक सावधान हो गये।

श्री. आम्बडेकर

पूने के श्री. गोपाल नारायण आम्बडेकर बाबा के परम भक्तों में से एक थे, जो ठाणे जिला और जव्हार स्टेट के आबकारी विभाग में दस वर्षों से कार्य करते थे। वहाँ से सेवानिवृत्त होने पर उन्होंने अन्य नौकरी ढूँढ़ी, परन्तु वे सफल न हुए। तब उन्हें दुर्भाग्य ने चारों ओर से घेर लिया, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति और भी अधिक दयनीय हो गई। ऐसी परिस्थिति में उन्होंने सात वर्ष व्यतीत किये। वे प्रति वर्ष शिरडी जाते और अपनी दुःखदायी कथा वार्त्ता बाबा को सुनाया करते थे। सन् १९१६ में तो उनकी स्थिति और भी अधिक चिन्ताजनक हो गई। तब उन्होंने शिरडी जाकर आत्महत्या करने की ठानी। इसलिए वे अपनी पत्नी को साथ लेकर शिरडी आये और वहाँ दो मास तक ठहरे। एक रात्रि को दीक्षितवाड़े के सामने एक बैलगाड़ी पर बैठे-बैठे उन्होंने कुएँ में गिर कर प्राणान्त करने का और साथ ही बाबा ने उनकी रक्षा करने का निश्चय किया। वहीं समीप ही एक भोजनालय के मालिक श्री. सगुण मेरु नायक ठीक उसी समय बाहर आकर उनसे इस प्रकार वार्त्तालाप करने लगे कि "क्या आपने कभी श्री अक्कलकोट महाराज की जीवनी पढ़ी है?" सगुण से पुस्तक लेकर उन्होंने पढ़ना प्रारम्भ कर दिया। पुस्तक पढ़ते-पढ़ते वे एक ऐसी कथा पर पहुँचे, जो इस प्रकार थी – श्री अक्कलकोटकर महाराज के जीवन काल में एक व्यक्ति असाध्य रोग से पीड़ित था। जब वह किसी प्रकार भी कष्ट सह न सका तो वह बिलकुल निराश हो गया और एक रात्रि को कुएँ में कूद पड़ा। तत्क्षण ही महाराज वहाँ पहुँच गये और उन्होंने स्वयं अपने हाथों से उसे बाहर निकाला। वे उसे समझाने लगे कि **"तुम्हें अपने शुभ अशुभ कर्मों का फल अवश्य ही भोगना चाहिए। यदि भोग अपूर्ण रह गया तो पुनर्जन्म धारण करना पड़ेगा, इसलिये मृत्यु से यह श्रेयस्कर है कि कुछ काल तक उन्हें सहन कर पूर्व जन्मों के कर्मों का भोग समाप्त कर सदैव के लिये मुक्त हो जाओ।"**

यह सामयिक और उपयुक्त कथा पढ़कर आम्बडेकर को महान् आश्चर्य हुआ और वे द्रवित हो गये।

यदि इस कथा द्वारा उन्हें बाबा का संकेत प्राप्त न होता तो अभी तक उनका प्राणान्त ही हो गया होता। बाबा की व्यापकता और दयालुता देखकर उनका विश्वास दृढ़ हो गया और वे बाबा के परम भक्त बन गये। उनके पिता श्री अक्कलकोटकर महाराज के शिष्य थे और बाबा की इच्छा भी उन्हें उन्हीं के पद-चिन्हों का अनुसरण कराने की थी। बाबा

ने उन्हें आशीर्वाद दिया और अब उनका भाग्य चमक उठा। उन्होंने ज्योतिष शास्त्र के अध्ययन में निपुणता प्राप्त कर उसमें बहुत उन्नति कर ली और बहुत-सा धन अर्जित करके अपना शेष जीवन सुख और शान्तिपूर्वक व्यतीत किया।

॥ सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ॥

अध्याय - २७

भागवत और विष्णुसहस्त्रनाम प्रदान कर अनुगृहीत करना, गीता रहस्य, खापर्डे।

इस अध्याय में बतलाया गया है कि श्रीसाईबाबा ने किस प्रकार धार्मिक ग्रन्थों को करस्पर्श से पवित्र कर अपने भक्तों को पारायण के लिये देकर अनुगृहीत किया तथा और भी अन्य कई घटनाओं का उल्लेख किया गया है।

प्रारम्भ

जन-साधारण का ऐसा विश्वास है कि समुद्र में स्नान कर लेने से ही समस्त तीर्थों तथा पवित्र नदियों में स्नान करने का पुण्य प्राप्त हो जाता है। ठीक इसी प्रकार सद्‌गुरु के चरणों का आश्रय लेने मात्र से तीनों शक्तियों (ब्रह्मा, विष्णु, और महेश) और परब्रह्म को नमन करने का श्रेय सहज ही प्राप्त हो जाता है। श्री सच्चिदानंद साईमहाराज की जय हो! वे तो भक्तों के लिये कामकल्पतरु, दया के सागर और आत्मानुभूति देने वाले हैं। हे साई! तुम अपनी कथाओं के श्रवण में मेरी श्रद्धा जागृत कर दो। घनघोर वर्षा ऋतु में जिस प्रकार चातक पक्षी स्वाति नक्षत्र की केवल एक बूँद का पान कर प्रसन्न हो जाता है, उसी प्रकार अपनी कथाओं के सारसिन्धु से प्रगटित एक जल कण का सहस्त्रांश दे दो, जिससे पाठकों और श्रोताओं के हृदय तृप्त होकर प्रसन्नता से भरपूर हो जायें। शरीर से स्वेद प्रवाहित होने लगे, आँसुओं से नेत्र परिपूर्ण हो जायें, प्राण स्थिरता पाकर चित्त एकाग्र हो जाये और पल-पलपर रोमांच हो उठे, ऐसा सात्त्विक भाव सभी में जागृत कर दो। पारस्परिक वैमनस्य तथा वर्ग-अपवर्ग का भेद-भाव नष्ट कर दो, जिससे वे तुम्हारी भक्ति में सिसकें, बिलखें और कम्पित हो उठें। यदि ये सब भाव उत्पन्न होने लगें तो इसे गुरु-कृपा के लक्षण जानो। इन भावों को अन्तःकरण में उदित देखकर गुरु अत्यन्त प्रसन्न होकर तुम्हें आत्मानुभूति की ओर अग्रसर करेंगे। **माया से मुक्त होने का एकमात्र सहज उपाय अनन्य भाव से केवल श्रीसाईबाबा की**

शरण जाना ही है। वेद-वेदान्त भी मायारूपी सागर से पार नहीं उतार सकते। यह कार्य तो केवल सद्गुरु द्वारा ही संभव है। समस्त प्राणियों और भूतों में ईश्वर-दर्शन करने के योग्य बनाने की क्षमता केवल उन्हीं में है।

पवित्र ग्रन्थों का प्रदान

गत अध्याय में बाबा की उपदेश-शैली की नवीनता ज्ञात हो चुकी है। इस अध्याय में उसके केवल एक उदाहरण का ही वर्णन करेंगे। भक्तों को जिस ग्रन्थविशेष का पारायण करना होता था, उसे वे बाबा के करकमलों में भेंट कर देते थे और यदि बाबा उसे अपने करकमलों से स्पर्श कर लौटा देते तो वे उसे स्वीकार कर लेते थे। उनकी ऐसी भावना हो जाती थी कि ऐसे ग्रन्थ का यदि नित्य पठन किया जायेगा तो बाबा सदैव उनके साथ ही होंगे। एक बार काका महाजनी श्री एकनाथी भागवत लेकर शिरडी आये। शामा ने यह ग्रन्थ अध्ययन के लिये उनसे ले लिया और उसे लिये हुए वे मसजिद में पहुँचे। तब बाबा ने वह ग्रन्थ शामा से ले लिया और उन्होंने उसे स्पर्श कर कुछ विशेष पृष्ठों को देखकर उसे सँभाल कर रखने की आज्ञा देकर वापस लौटा दिया। शामा ने उन्हें बताया कि यह ग्रन्थ तो काकासाहेब का है और उन्हें इसे वापस लौटाना है। तब बाबा कहने लगे कि "नहीं, नहीं, यह ग्रन्थ तो मैं तुम्हें दे रहा हूँ। तुम इसे सावधानी से अपने पास रखो। यह तुम्हें अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।" कुछ दिनों के पश्चात् काका महाजनी पुनः श्रीएकनाथी भागवत की दूसरी प्रति लेकर आये और बाबा के करकमलों में भेंट कर दी, जिसे बाबा ने प्रसाद-स्वरूप लौटाकर उन्हें भी उसे सावधानी से सँभाल कर रखने की आज्ञा दी। साथ ही बाबा ने उन्हें आश्वासन दिया कि यह तुम्हें उत्तम स्थिति में पहुँचाने में सहायक सिद्ध होगा। काका ने उन्हें प्रणाम कर उसे स्वीकार कर लिया।

शामा और विष्णुसहस्रनाम

शामा बाबा के अंतरंग भक्त थे। इस कारण बाबा उन्हें एक विचित्र ढंग से 'विष्णुसहस्रनाम' प्रसादरूप में देने की कृपा करना चाहते थे। तभी एक रामदासी आकर कुछ दिन शिरडी में ठहरा। वह नित्य नियमानुसार प्रातःकाल उठता और हाथ मुँह धोने के पश्चात् स्नान कर भगवा वस्त्र धारण करता तथा शरीर पर भस्म लगाकर विष्णुसहस्रनाम का जप किया करता था। वह अध्यात्मरामायण का भी श्रद्धापूर्वक नित्य पाठ किया करता था और बहुधा इन्हीं ग्रन्थों को ही पढ़ा करता था। कुछ दिनों के पश्चात् बाबा ने शामा को भी 'विष्णुसहस्रनाम' से परिचित कराने का विचार कर रामदासी को

अपने समीप बुलाकर उससे कहा कि मेरे उदर में अत्यन्त पीड़ा हो रही है और जब तक मैं सोनामुखी का सेवन न करूँगा, तब तक मेरा कष्ट दूर न होगा। तब रामदासी ने अपना पाठ स्थगित कर दिया और वह औषधि लाने बाजार चला गया। उसी समय बाबा अपने आसन से उठे और जहाँ वह पाठ किया करता था, वहाँ जाकर उन्होंने विष्णुसहस्रनाम की वह पुस्तिका उठाई और पुनः अपने आसन पर विराजमान होकर शामा से कहने लगे कि "यह पुस्तक अमूल्य और मनोवांछित फल देने वाली है। इसलिए मैं तुम्हें इसे प्रदान कर रहा हूँ, ताकि तुम इसका नित्य पठन करो। एक बार जब मैं अधिक रुग्ण था तो मेरा हृदय धड़कने लगा। मेरे प्राणपखेरू उड़ना ही चाहते थे कि उसी समय मैंने इस सद्ग्रन्थ को अपने हृदय पर रख लिया। कैसा सुख पहुँचाया इसने? उस समय मुझे ऐसा ही भान हुआ, मानो अल्लाह ने स्वयं ही पृथ्वी पर आकर मेरी रक्षा की। इस कारण यह ग्रन्थ मैं तुम्हें दे रहा हूँ। इसे थोड़ा धीरे-धीरे, कम से कम एक श्लोक प्रतिदिन अवश्य पढ़ना, जिससे तुम्हारा बहुत भला होगा।" तब शामा कहने लगे कि "मुझे इस ग्रन्थ की आवश्यकता नहीं, क्योंकि इस का स्वामी रामदासी एक पागल, हठी और अतिक्रोधी व्यक्ति है, जो व्यर्थ ही अभी आकर लड़ने को तैयार हो जायेगा। अल्पशिक्षित होने के नाते, मैं संस्कृत भाषा में लिखित इस ग्रन्थ को पढ़ने में भी असमर्थ हूँ।" शामा की धारणा थी कि बाबा मेरे और रामदासी के बीच मनमुटाव करवाना चाहते हैं, इसलिये ही यह नाटक रचा है। बाबा का विचार उनके प्रति क्या था, यह उनकी समझ में न आया। बाबा 'येन केन प्रकारेण' विष्णुसहस्रनाम उसके कंठ में उतार देना चाहते थे। वे तो अपने एक अल्पशिक्षित अंतरंग भक्त को सांसारिक दुःखों से मुक्त कर देना चाहते थे। **ईश्वर-नाम के जप का महत्व तो सभी को विदित ही है, जो हमें पापों से बचाकर कुवृत्तियों से हमारी रक्षा कर, जन्म तथा मृत्यु के बन्धन से छुड़ा देता है। यह आत्मशुद्धि के लिये एक उत्तम साधन है, जिसमें न किसी सामग्री की आवश्यकता है और न किसी नियम के बन्धन की। इससे सुगम और प्रभावकारी साधन अन्य कोई नहीं।** बाबा की इच्छा तो शामा से यह साधना कराने की थी, परन्तु शामा ऐसा न चाहते थे, इसीलिये बाबा ने उनपर दबाव डाला। ऐसा बहुधा सुनने में आया है कि बहुत पहले श्री एकनाथ महाराज ने भी अपने एक पड़ोसी ब्राह्मण से विष्णुसहस्रनाम का जप करने के लिये आग्रह कर उसकी रक्षा की थी। विष्णुसहस्रनाम का जप चित्तशुद्धि के लिये एक श्रेष्ठ तथा स्पष्ट मार्ग है। इसीलिये बाबा ने शामा को अनुरोधपूर्वक इसके जप में प्रवृत्त किया। रामदासी बाजार से तुरन्त सोनामुखी लेकर लौट आया। अण्णा चिंचणीकर, जो वहीं उपस्थित थे, प्रायः पूरे 'नारद मुनि' ही थे और उन्होंने उक्त घटना का सम्पूर्ण वृत्तांत रामदासी को बता दिया।

रामदासी क्रोधावेश में आकर शामा की ओर लपका और कहने लगा कि "यह तुम्हारा ही कार्य है, जो तुमने बाबा के द्वारा मुझे उदर पीड़ा के बहाने औषधि लेने को भेजा। यदि तुमने पुस्तक न लौटाई तो मैं तुम्हारा सिर तोड़ दूँगा।" शामा ने उसे शान्तिपूर्वक समझाया, परन्तु उनका कहना व्यर्थ ही हुआ। तब बाबा प्रेमपूर्वक बोले कि "अरे रामदासी, यह क्या बात है? क्यों उपद्रव कर रहे हो? क्या शामा अपना बालक नहीं है? तुम उसे व्यर्थ ही क्यों गाली दे रहे हो? मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि तुम्हारी प्रकृति ही उपद्रवी है। क्या तुम नम्र और मृदुल वाणी नहीं बोल सकते? तुम नित्य प्रति इन पवित्र ग्रन्थों का पाठ किया करते हो और फिर भी तुम्हारा चित्त अशुद्ध ही है? जब तुम्हारी इच्छायें ही तुम्हारे वश में नहीं हैं तो तुम रामदासी कैसे? तुम्हें तो समस्त वस्तुओं से अनासक्त (वैराग्य) होना चाहिये। कैसी विचित्र बात है कि तुम्हें इस पुस्तक पर इतना अधिक मोह है? सच्चे रामदासी को तो ममता त्याग कर समदर्शी होना चाहिये। तुम तो अभी बालक शामा से केवल एक छोटी सी पुस्तक के लिये झगड़ा कर रहे थे। जाओ, अपने आसन पर बैठो। पैसों से पुस्तकें तो अनेक प्राप्त हो सकती हैं, परन्तु मनुष्य नहीं। उत्तम विचारक बनकर विवेकशील होओ। पुस्तक का मूल्य ही क्या है और उससे शामा को क्या प्रयोजन? मैंने स्वयं उठाकर वह पुस्तक उसे दी थी, यह सोचकर कि तुम्हें तो यह पुस्तक पूर्णतः कंठस्थ है। शामा को इसके पठन से कुछ लाभ पहुँचे, इसलिये मैंने उसे दे दी।" बाबा के ये शब्द कितने मृदु और मार्मिक तथा अमृततुल्य हैं! इनका प्रभाव रामदासी पर पड़ा। वह चुप हो गया तथा फिर शामा से बोला कि मैं इसके बदले में पंचरत्नी गीता की एक प्रति स्वीकार कर लूँगा। तब शामा भी प्रसन्न होकर कहने लगे कि "एक ही क्यों, मैं तो तुम्हें उसके बदले में १० प्रतियाँ देने को तैयार हूँ।"

इस प्रकार यह विवाद तो शान्त हो गया, परन्तु अब प्रश्न यह आया कि रामदासी ने पंचरत्नी गीता के लिये- एक ऐसी पुस्तक जिसका उसे कभी ध्यान भी न आया था, इतना आग्रह क्यों किया और जो मसजिद में हर दिन धार्मिक ग्रन्थों का पाठ करता हो, वह बाबा के समक्ष ही इतना उत्पात करने पर क्यों उतारू हो गया? हम नहीं जानते कि इस दोष का निराकरण कैसे करें और किसे दोषी ठहरावें? हम तो केवल इतना ही जान सके हैं कि यदि इस प्रणाली का अनुसरण न किया गया होता तो विषय का महत्व और ईश्वर नाम की महिमा तथा शामा को विष्णुसहस्रनाम के पठन का शुभ अवसर ही प्राप्त न होता। इससे यही प्रतीत होता है कि बाबा के उपदेश की शैली और उसकी प्रक्रिया अद्वितीय है। शामा ने धीरे-धीरे इस ग्रन्थ का इतना अध्ययन कर लिया और उन्हें इस

विषय का इतना ज्ञान हो गया कि वह श्रीमान् बूटीसाहेब के दामाद-प्रोफेसर जी.जी. नारके, एम.ए. (इंजीनियरिंग कालेज, पूना) को भी उसका यथार्थ अर्थ समझाने में पूर्ण सफल हुए।

गीता रहस्य

ब्रह्मविद्या (अध्यात्म) का जो भक्त अध्ययन करते, उन्हें बाबा सदैव प्रोत्साहित करते थे। इसका एक उदाहरण है कि एक समय बापूसाहेब जोग का एक पारसल आया, जिसमें श्री. लोकमान्य तिलक कृत गीता-भाष्य की एक प्रति थी, जिसे काँख में दबाये हुये वे मसजिद में आये। जब वे चरण-वन्दना के लिये झुके तो वह पारसल बाबा के श्री-चरणों पर गिर पड़ा। तब बाबा उनसे पूछने लगे कि इसमें क्या है? श्री. जोग ने तत्काल ही पारसल से वह पुस्तक निकालकर बाबा के कर-कमलों में रख दी। बाबा ने थोड़ी देर उसके कुछ पृष्ठ देखकर जेब से एक रुपया निकाला और उसे पुस्तक पर रखकर जोग को लौटा दिया और कहने लगे कि "इसका ध्यानपूर्वक अध्ययन करते रहो, इससे तुम्हारा कल्याण होगा।"

श्रीमान् और श्रीमती खापर्डे

एक बार श्री. दादासाहेब खापर्डे सहकुटुम्ब शिरडी आये और कुछ मास वहीं ठहरे। उनके ठहरने के नित्य कार्यक्रम का वर्णन श्रीसाईलीला पत्रिका के प्रथम भाग में प्रकाशित हुआ है। दादा कोई सामान्य व्यक्ति न थे। वे एक धनाढ्य और अमरावती (बरार) के सुप्रसिद्ध वकील तथा केन्द्रीय धारा सभा (दिल्ली) के सदस्य थे। वे विद्वान् और प्रवीण वक्ता भी थे। इतने गुणवान् होते हुए भी उन्हें बाबा के समक्ष मुँह खोलने का साहस न होता था। अधिकांश भक्तगण तो बाबा से हर समय अपनी शंका का समाधान कर लिया करते थे। केवल तीन व्यक्ति खापर्डे, नूलकर और बूटी ही ऐसे थे, जो सदैव मौन धारण किये रहते तथा अति विनम्र और उत्तम प्रकृति के व्यक्ति थे। दादासाहेब, विद्यारण्य स्वामी द्वारा रचित **पंचदशी** नामक प्रसिद्ध संस्कृत ग्रन्थ, जिसमें अद्वैतवेदान्त का दर्शन है, उसका विवरण दूसरों को तो समझाया करते थे, परन्तु जब वे बाबा के समीप मसजिद में आये तो वे एक शब्द का भी उच्चारण न कर सके। यथार्थ में कोई व्यक्ति, चाहे वह जितना वेदवेदान्तों में पारंगत क्यों न हो, परन्तु ब्रह्मपद को पहुँचे हुए व्यक्ति के समक्ष उसका शुष्क ज्ञान प्रकाश नहीं दे सकता। दादा चार मास तथा उनकी पत्नी सात मास वहाँ ठहरीं। वे दोनों अपने शिरडी-प्रवास से अत्यन्त प्रसन्न

थे। श्रीमती खापर्डे श्रद्धालु तथा पूर्ण भक्त थीं, इसलिये उनका साई चरणों में अत्यन्त प्रेम था। प्रतिदिन दोपहर को वे स्वयं नैवेद्य लेकर मसजिद को जातीं और जब बाबा उसे ग्रहण कर लेते, तभी वे लौटकर अपना भोजन किया करती थीं। बाबा उनकी अटल श्रद्धा की झाँकी का दूसरों को भी दर्शन कराना चाहते थे। एक दिन दोपहर को वे साँजा, पूरी, भात, सार, खीर और अन्य भोज्य पदार्थ लेकर मसजिद में आईं।

और दिनों तो भोजन प्रायः घंटों तक बाबा की प्रतीक्षा में पड़ा रहता था, परन्तु उस दिन वे तुरंत ही उठे और भोजन के स्थान पर आकर आसन ग्रहण कर लिया और थाली पर से कपड़ा हटाकर उन्होंने रुचिपूर्वक भोजन करना प्रारम्भ कर दिया। तब शामा कहने लगे कि "यह पक्षपात क्यों? दूसरों की थालियों पर तो आप दृष्टि तक नहीं डालते, उल्टे उन्हें फेंक देते हैं, परन्तु आज इस भोजन को आप बड़ी उत्सुकता और रुचि से खा रहे हैं। आज इस बाई का भोजन आपको इतना स्वादिष्ट क्यों लगा? यह विषय तो हम लोगों के लिये एक समस्या बन गया है।" तब बाबा ने इस प्रकार समझायाः–

"सचमुच ही इस भोजन में एक विचित्रता है। पूर्व जन्म में यह बाई एक व्यापारी की मोटी गाय थी, जो बहुत अधिक दूध देती थी। पशुयोनि त्यागकर इसने एक माली के कुटुम्ब में जन्म लिया। उस जन्म के उपरान्त फिर यह एक क्षत्रिय वंश में उत्पन्न हुई और इसका ब्याह एक व्यापारी से हो गया। दीर्घ काल के पश्चात् इनसे भेंट हुई है। इसलिये इनकी थाली में से प्रेमपूर्वक चार ग्रास तो खा लेने दो।" ऐसा बतला कर बाबा ने भर पेट भोजन किया और फिर हाथ मुँह धोकर और तृप्ति की चार-पाँच डकारें लेकर वे अपने आसन पर पुनः आ बिराजे। फिर श्रीमती खापर्डे ने बाबा को नमन किया और उनके पाद-सेवन करने लगी। बाबा उनसे वार्त्तालाप करने लगे और साथ-साथ उनके हाथ भी दबाने लगे। इस प्रकार परस्पर सेवा करते देख शामा मुस्कुराने लगा और बोला कि "देखो तो, यह एक अद्भुत दृश्य है कि भगवान और भक्त एक दूसरे की सेवा कर रहे हैं।" उनकी सच्ची लगन देखकर बाबा अत्यन्त कोमल तथा मृदु शब्दों में अपने श्रीमुख से कहने लगे कि अब सदैव "राजाराम, राजाराम" का जप किया करो और यदि तुमने इसका अभ्यास क्रमबद्ध कर लिया तो तुम्हें अपने जीवन के ध्येय की प्राप्ति अवश्य हो जायेगी। तुम्हें पूर्ण शान्ति प्राप्त होकर अत्यधिक लाभ होगा। आध्यात्मिक विषयों से अपरिचित व्यक्तियों के लिये यह घटना साधारण-सी प्रतीत होगी, परन्तु शास्त्रीय भाषा में यह 'शक्तिपात्' के नाम से विदित है, अर्थात् गुरु द्वारा शिष्य में शक्तिसंचार करना। कितने शक्तिशाली और प्रभावकारी बाबा के वे शब्द थे, जो एक क्षण में ही

हृदय-कमल में प्रवेश कर गये और वहाँ अंकुरित हो उठे। यह घटना गुरु-शिष्य सम्बन्ध के आदर्श की द्योतक है। गुरु-शिष्य दोनों को एक दूसरे को अभिन्न जानकर प्रेम और सेवा करनी चाहिये, क्योंकि उन दोनों में कोई भेद नहीं है। वे दोनों अभिन्न और एक ही हैं, जो कभी पृथक् नहीं हो सकते। शिष्य गुरुदेव के चरणों पर मस्तक रख रहा है, यह तो केवल बाह्य दृश्यमात्र है। आन्तरिक दृष्टिसे दोनों अभिन्न और एक ही हैं तथा जो उनमें भेद समझता है, वह अभी अपरिपक्व और अपूर्ण ही है।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ॥

अध्याय - २८

चिड़ियों का शिरडी को खींचा जाना - (१) लक्ष्मीचंद (२) बुरहानपुर की महिला (३) मेघा का निर्वाण।

प्राक्कथन

श्री साई अनंत हैं। वे एक चींटी से लेकर ब्रह्माण्ड पर्यन्त सर्व भूतों में व्याप्त हैं। वेद और आत्मविज्ञान में पूर्ण पारंगत होने के कारण वे सद्गुरु कहलाने के सर्वथा योग्य हैं। चाहे कोई कितना ही विद्वान् क्यों न हो, परन्तु यदि वह अपने शिष्य की जागृति कर उसे आत्मस्वरूप का दर्शन न करा सके तो उसे सद्गुरु के नाम से कदापि सम्बोधित नहीं किया जा सकता। साधारणतः पिता केवल इस नश्वर शरीर का ही जन्मदाता है, परन्तु सद्गुरु तो जन्म और मृत्यु दोनों से ही मुक्ति करा देने वाले हैं। अतः वे अन्य लोगों से अधिक दयावन्त हैं।

श्री साईबाबा हमेशा कहा करते थे कि **"मेरा भक्त चाहे एक हजार कोस की दूरी पर ही क्यों न हो, वह शिरडी को ऐसा खिंचता चला आता है, जैसे धागे से बँधी हुई चिड़ियाँ खिंच कर स्वयं ही आ जाती हैं।"** इस अध्याय में ऐसी ही तीन चिड़ियों का वर्णन है।

(१) लाला लक्ष्मीचन्द

ये महानुभाव बम्बई के श्री वेंकटेश्वर प्रेस में नौकरी करते थे। वहाँ से नौकरी छोड़कर वे रेलवे विभाग में आए और फिर वे मेसर्स रैली ब्रदर्स एंड कम्पनी में मुन्शी का कार्य करने लगे। उनका सन् १९१० में श्री साईबाबा से सम्पर्क हुआ। बड़े दिन (क्रिसमस) से लगभग एक या दो मास पहले सांताक्रुज में उन्होंने स्वप्न में एक दाढ़ीवाले वृद्ध को देखा, जो चारों ओर से भक्तों से घिरा हुआ खड़ा था। कुछ दिनों के पश्चात् वे अपने मित्र श्री. दत्तात्रेय मंजुनाथ बिजूर के यहाँ दासगणू का कीर्तन सुनने गये। दासगणू का यह

नियम था कि वे कीर्तन करते समय श्रोताओं के सम्मुख श्री साईबाबा का चित्र रख लिया करते थे। लक्ष्मीचन्द को यह चित्र देखकर महान् आश्चर्य हुआ, क्योंकि स्वप्न में उन्हें जिस वृद्ध के दर्शन हुए थे, उनकी आकृति भी ठीक इस चित्र के अनुरूप ही थी। इससे वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि स्वप्न में दर्शन देने वाले स्वयं शिरडी के श्री साईनाथ समर्थ के अतिरिक्त और कोई नहीं है। चित्र-दर्शन, दासगणू का मधुर कीर्तन और उनके संत तुकाराम पर प्रवचन आदि का कुछ ऐसा प्रभाव उनपर पड़ा कि उन्होंने शिरडी-यात्रा का दृढ़ संकल्प कर लिया। भक्तों को चिरकाल से ही ऐसा अनुभव होता आया है कि **जो सद्गुरु या अन्य किसी आध्यात्मिक ज्ञान की खोज में निकलता है, उसकी ईश्वर सदैव ही कुछ न कुछ सहायता करते हैं।** उसी रात्रि को लगभग आठ बजे उनके एक मित्र शंकरराव ने उनका द्वार खटखटाया और पूछा कि क्या आप हमारे साथ शिरडी चलने को तैयार हैं? लक्ष्मीचन्द के हर्ष का पारावार न रहा और उन्होंने तुरन्त ही शिरडी चलने का निश्चय कर लिया। एक मारवाड़ी से पन्द्रह रुपये उधार लेकर तथा अन्य आवश्यक प्रबन्ध कर उन्होंने शिरडी को प्रस्थान कर दिया। रेलगाड़ी में उन्होंने अपने मित्र के साथ कुछ देर भजन भी किया। उसी डिब्बे में चार यवन यात्री भी बैठे थे, जो शिरडी के समीप ही अपने-अपने घरों को लौट रहे थे। लक्ष्मीचन्द ने उन लोगों से श्री साईबाबा के सम्बन्ध में कुछ पूछताछ की। तब लोगों ने उन्हें बताया कि श्री साईबाबा शिरडी में अनेक वर्षों से निवास कर रहे हैं और वे एक पहुँचे हुए संत हैं। जब वे कोपरगाँव पहुँचे तो बाबा को भेंट देने के लिए कुछ अमरूद खरीदने का उन्होंने विचार किया। वे वहाँ के प्राकृतिक सौंदर्यमय दृश्य देखने में कुछ ऐसे तल्लीन हुए कि उन्हें अमरूद लेने की सुधि ही न रही। परन्तु जब वे शिरडी के समीप आये तो यकायक उन्हें अमरूद खरीदने की स्मृति हो आई। इसी बीच उन्होंने देखा कि एक वृद्धा टोकरी में अमरूद लिये ताँगे के पीछे-पीछे दौड़ती चली आ रही है। यह देख उन्होंने ताँगा रुकवाया और उनमें से कुछ बढ़िया अमरूद खरीद लिये। तब वह वृद्धा उनसे कहने लगी कि "कृपा कर ये शेष अमरूद भी मेरी ओर से बाबा को भेंट कर देना।" यह सुनकर तत्क्षण ही उन्हें विचार हो आया कि मैंने अमरूद खरीदने की जो इच्छा पहले की थी और जिसे मैं भूल गया था, उसी की इस वृद्धा ने पुनः स्मृति करा दी है। श्री साईबाबा के प्रति उसकी भक्ति देख वे दोनों बड़े चकित हुए। लक्ष्मीचंद ने यह सोचकर कि हो सकता है कि स्वप्न में जिस वृद्ध के दर्शन मैंने किये थे, उनकी ही यह कोई रिश्तेदार हो, वे आगे बढ़े। शिरडी के समीप पहुँचने पर उन्हें दूर से ही मसजिद में फहराती ध्वजायें दीखने लगीं, जिन्हें देख प्रणाम कर अपने हाथ में पूजन-सामग्री लेकर वे

मसजिद पहुँचे और बाबा का यथाविधि पूजन कर वे द्रवित हो गये। उनके दर्शन कर वे अत्यन्त आनन्दित हुए तथा उनके शीतल चरणों से ऐसे लिपटे, जैसे एक मधुमक्खी कमल के मकरन्द की सुगन्ध से मुग्ध होकर उससे लिपट जाती है। तब बाबा ने उनसे जो कुछ कहा, उसका वर्णन हेमाडपंत ने अपने मूल ग्रन्थ में इस प्रकार किया है "साले, रास्ते में भजन करते और दूसरे आदमी से पूछते हैं। क्या दूसरे से पूछना? सब कुछ अपनी आँखों से देखना। काहे को दूसरे आदमी से पूछना? सपना क्या झूठा है या सच्चा? कर लो अपना विचार आप। मारवाड़ी से उधार लेने की क्या जरूरत थी? हुई क्या मुराद की पूर्त्ति?" ये शब्द सुनकर उनकी सर्वव्यापकता पर लक्ष्मीचन्द को बड़ा अचम्भा हुआ। वे बड़े लज्जित हुए कि घर से शिरडी तक मार्ग में जो कुछ हुआ, उसका उन्हें सब पता है। इसमें विशेष ध्यान देने योग्य बात केवल यह है कि बाबा यह नहीं चाहते थे कि उनके दर्शन के लिए कर्ज लिया जाय या तीर्थ यात्रा में छुट्टी मनायें।

साँजा (उपमा)

दोपहर के समय जब लक्ष्मीचंद भोजन को बैठे तो उन्हें एक भक्त ने साँजे का प्रसाद लाकर दिया, जिसे पाकर वे बड़े प्रसन्न हुए। दूसरे दिन भी वे साँजा की आशा लगाये बैठे रहे, परन्तु किसी भक्त ने वह प्रसाद न दिया, जिसके लिए वे अति उत्सुक थे। तीसरे दिन दोपहर की आरती पर बापूसाहेब जोग ने बाबा से पूछा कि नैवेद्य के लिए क्या बनाया जावे? तब बाबा ने उनसे साँजा लाने को कहा। भक्तगण दो बड़े बर्तनों में साँजा भर कर ले आये। लक्ष्मीचंद को भूख भी अधिक लगी थी। साथ ही उनकी पीठ में दर्द भी था। बाबा ने लक्ष्मीचंद से कहा- (हेमाडपंत ने मूल ग्रंथ में इस प्रकार वर्णन किया है) "तुमको भूख लगी है, अच्छा हुआ। कमर में दर्द भी है। लो, अब साँजे की ही करो दवा।" उन्हें पुनः अचम्भा हुआ कि मेरे मन के समस्त विचारों को उन्होंने जान लिया है। वस्तुतः वे सर्वज्ञ हैं!

कुदृष्टि

इसी यात्रा में एक बार उनको चावड़ी का जुलूस देखने का भी सौभाग्य प्राप्त हो गया। उस दिन बाबा कफ़ से अधिक पीड़ित थे। उन्हें विचार आया कि इस कफ़ का कारण शायद किसी की नजर लगी हो। दूसरे दिन प्रातः काल जब बाबा मसजिद को गये तो शामा से कहने लगे कि "कल जो मुझे कफ़ से पीड़ा हो रही थी, उसका मुख्य कारण किसी की कुदृष्टि ही है। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि किसी की नजर लग

गई है, इसीलिए यह पीड़ा मुझे हो गई है। लक्ष्मीचन्द के मन में जो विचार उठ रहे थे, वही बाबा ने भी कह दिये। बाबा की सर्वज्ञता के अनेक प्रमाण तथा भक्तों के प्रति उनका स्नेह देखकर लक्ष्मीचंद बाबा के चरणों पर गिर पड़े और कहने लगे कि "आपके प्रिय दर्शन से मेरे चित्त को बड़ी प्रसन्नता हुई है। मेरा मन-मधुप आपके चरण कमल और भजनों में ही लगा रहे। आपके अतिरिक्त भी अन्य कोई ईश्वर है, इसका मुझे ज्ञान नहीं। मुझ पर आप सदा दया और स्नेह करें और अपने चरणों के दीन दास की रक्षा कर उसका कल्याण करें। आपके भवभयनाशक चरणों का स्मरण करते हुये मेरा जीवन आनन्द से व्यतीत हो जाये, ऐसी मेरी आपसे विनम्र प्रार्थना है।"

बाबा से आशीर्वाद तथा उदी लेकर वे मित्र के साथ प्रसन्न और सन्तुष्ट होकर मार्ग में उनकी कीर्त्ति का गुणगान करते हुए घर वापस लौट आये और सदैव उनके अनन्य भक्त बने रहे। शिरडी जाने वालों के हाथ वे उनको हार, कपूर और दक्षिणा भेजा करते थे।

(२) बुरहानपुर की महिला

अब हम दूसरी चिड़िया (भक्त) का वर्णन करेंगे। एक दिन बुरहानपुर में एक महिला ने स्वप्न में देखा कि श्रीसाईबाबा उसके द्वार पर खड़े भोजन के लिए खिचड़ी माँग रहे हैं। उसने उठकर देखा तो द्वारपर कोई भी न था। फिर भी वह प्रसन्न हुई और उसने यह स्वप्न अपने पति तथा अन्य लोगों को सुनाया। उसका पति डाक विभाग में नौकरी करता था। वे दोनों ही बड़े धार्मिक थे। जब उसका स्थानान्तरण अकोला को होने लगा तो दोनों ने शिरडी जाने का भी निश्चय किया और एक शुभ दिन उन्होंने शिरडी को प्रस्थान कर दिया। मार्ग में गोमती तीर्थ होकर वे शिरडी पहुँचे और वहाँ दो माह तक ठहरे। प्रतिदिन वे मसजिद जाते और बाबा का पूजन कर आनन्द से अपना समय व्यतीत करते थे। यद्यपि दम्पति खिचड़ी का नैवेद्य भेंट करने को ही आये थे, परन्तु किसी कारणवश उन्हें १४ दिनों तक ऐसा संयोग प्राप्त न हो सका। उनकी स्त्री इस कार्य में अब अधिक विलम्ब न करना चाहती थी। इसीलिए जब १५ वें दिन दोपहर के समय वह खिचड़ी लेकर मसजिद में पहुँची तो उसने देखा कि बाबा अन्य लोगों के साथ भोजन करने बैठ चुके हैं। परदा गिर चुका था, जिसके पश्चात् किसी का साहस न था कि वह भीतर प्रवेश कर सके। परन्तु वह एक क्षण भी प्रतीक्षा न कर सकी और हाथ से परदा हटाकर भीतर चली आई। बड़े आश्चर्य की बात थी कि उसने देखा कि बाबा की इच्छा उस दिन प्रथमतः खिचड़ी खाने की ही थी, जिसकी उन्हें आवश्यकता

थी। जब वह थाली लेकर भीतर आई तो बाबा को बड़ा हर्ष हुआ और वे उसी में से खिचड़ी के ग्रास लेकर खाने लगे। बाबा की ऐसी उत्सुकता देख प्रत्येक को बड़ा आश्चर्य हुआ और जिन्होंने यह खिचड़ी की वार्त्ता सुनी, उन्हें भक्तों के प्रति बाबा का असाधारण स्नेह देख बड़ी प्रसन्नता हुई।

मेघा का निर्वाण

अब तृतीय महान् पक्षी की चर्चा सुनिये। बिरमगाँव का रहने वाला मेघा अत्यन्त सीधा और अनपढ़ व्यक्ति था। वह रावबहादुर ह.वि. साठे के यहाँ रसोइया का काम किया करता था। वह शिवजी का परम भक्त था, और सदैव पंचाक्षरी मंत्र "नमः शिवाय" का जप किया करता था। सन्ध्योपासना आदि का उसे कुछ भी ज्ञान न था। यहाँ तक कि वह संध्या के मूल गायत्रीमंत्र को भी न जानता था। रावबहादुर साठे का उस पर अत्यन्त स्नेह था। इसलिये उन्होंने उसे सन्ध्या की विधि तथा गायत्रीमंत्र सिखला दिया। साठेसाहेब ने श्री साईबाबा को शिवजी का साक्षात् अवतार बताकर उसे शिरडी भेजने का निश्चय किया। किन्तु साठेसाहेब से पूछनेपर उन्होंने बताया कि श्री साईबाबा तो यवन हैं। इसलिये मेघा ने सोचा कि शिरडी में एक यवन को प्रणाम करना पड़े, यह अच्छी बात नहीं है। भोला-भाला आदमी तो वह था ही, इसलिये उसके मन में असमंजस पैदा हो गया। तब उसने अपने स्वामी से प्रार्थना की कि कृपा कर मुझे वहाँ न भेजें। परन्तु साठेसाहेब कहाँ मानने वाले थे? उनके सामने मेघा की एक न चली। उन्होंने उसे किसी प्रकार शिरडी भेज दिया तथा उसके द्वारा अपने ससुर गणेश दामोदर उपनाम दादा केलकर को, जो शिरडी में ही रहते थे- एक पत्र भेजा कि मेघाका परिचय बाबा से करा देना। शिरडी पहुँचने पर जब वह मसजिद में घुसा तो बाबा अत्यन्त क्रोधित हो गये और उसे उन्होंने मसजिद में आने की मनाही कर दी। वे गर्जना कर कहने लगे कि "उसे बाहर निकाल दो।" फिर मेघा की ओर देखकर कहने लगे कि "तुम तो एक उच्च कुलीन ब्राह्मण हो और मैं निम्न जाति का एक यवन। तुम्हारी जाति भ्रष्ट हो जायेगी। इसलिए यहाँ से बाहर निकल जाओ।" ये शब्द सुनकर मेघा काँप उठा। उसे बड़ा विस्मय हुआ कि जो कुछ उसके मन में विचार उठ रहे थे, उन्हें बाबा ने कैसे जान लिया? किसी प्रकार वह कुछ दिन वहाँ ठहरा और अपनी इच्छानुसार सेवा भी करता रहा, परन्तु उसकी इच्छा तृप्त न हुई। फिर वह घर लौट आया और वहाँ से त्रिंबक (नासिक जिला) को चला गया। वर्ष भरके पश्चात् वह पुनः शिरडी आया और इस बार दादा केलकर के कहने से उसे मसजिद में रहने का अवसर प्राप्त

हो गया। साईबाबा मौखिक उपदेश द्वारा मेघा की उन्नति करने के बदले उसका आंतरिक सुधार कर रहे थे। उसकी स्थिति में पर्याप्त परिवर्त्तन हो कर यथेष्ट प्रगति हो चुकी थी और अब तो वह श्री साईबाबा को शिवजी का ही साक्षात् अवतार समझने लगा था। शिवपूजन में बिल्व पत्रों की आवश्यकता होती है। इसलिए अपने शिवजी (बाबा) का पूजन करने के हेतु बिल्वपत्रों की खोज में वह मीलों दूर निकल जाया करता था। प्रतिदिन उसने ऐसा नियम बना लिया था कि गाँव में जितने भी देवालय थे, प्रथम वहाँ जाकर वह उनका पूजन करता और इसके पश्चात् ही वह मसजिद में बाबा को प्रणाम करता तथा कुछ देर चरण-सेवा करने के पश्चात् ही चरणामृत पान करता था। एक बार ऐसा हुआ कि खंडोबा के मंदिर का द्वार बन्द था। इस कारण वह बिना पूजन किये ही वहाँ से लौट आया और जब वह मसजिद में आया तो बाबा ने उसकी सेवा स्वीकार न की तथा उसे पुनः वहाँ जाकर पूजन कर आने को कहा और उसे बतलाया कि अब मंदिर के द्वार खुल गये हैं। मेघा ने जाकर देखा कि सचमुच मंदिर के द्वार खुल गये हैं। जब उसने लौटकर यथाविधि पूजा की, तब कहीं बाबा ने उसे अपना पूजन करने की अनुमति दी।

गंगास्नान

एक बार मकर संक्रान्ति के अवसर पर मेघा ने विचार किया कि बाबा को चन्दन का लेप करूँ तथा गंगाजल से उन्हें स्नान कराऊँ। बाबा ने पहले तो इसके लिए अपनी स्वीकृति न दी, परन्तु उसकी लगातार प्रार्थना के उपरांत उन्होंने किसी प्रकार स्वीकार कर लिया। गोदावरी नदी का पवित्र जल लाने के लिए मेघा को आठ कोस का चक्कर लगाना पड़ा। वह जल लेकर लौट आया और दोपहर तक पूर्ण व्यवस्था कर ली। तब उसने बाबा को तैयार होने की सूचना दी। बाबा ने पुनः मेघा से अनुरोध किया कि "मुझे इस झंझट से दूर ही रहने दो। मैं तो एक फकीर हूँ, मुझे गंगाजल से क्या प्रयोजन?" परन्तु मेघा कुछ सुनता ही न था। मेघा की तो यह दृढ़ धारणा थी कि शिवजी गंगाजल से अधिक प्रसन्न होते हैं। इसलिए ऐसे शुभ पर्व पर अपने शिवजी को स्नान कराना हमारा परम कर्त्तव्य है। अब तो बाबा को सहमत होना ही पड़ा और नीचे उतर कर वे एक पीढ़े पर बैठ गये तथा अपना मस्तक आगे करते हुए कहा कि "अरे मेघा! कम से कम इतनी कृपा तो करना कि मेरे केवल सिर पर ही पानी डालना। सिर शरीर का प्रधान अंग है और उस पर पानी डालना ही पूरे शरीर पर डालने के सदृश है।" मेघा ने "अच्छा अच्छा" कहते हुए बर्तन उठाकर सिर पर पानी डालना प्रारम्भ कर दिया। ऐसा

करने से उसे इतनी प्रसन्नता हुई कि उसने उच्च स्वर में "हर हर गंगे" की ध्वनि करते हुए समूचे बर्तन का पानी बाबा के सम्पूर्ण शरीर पर उँड़ेल दिया और फिर पानी का बर्तन एक ओर रखकर वह बाबा की ओर निहारने लगा। उसने देखा कि बाबा का तो केवल सिर ही भींगा है और शेष भाग ज्यों का त्यों बिल्कुल सूखा ही है। यह देख उसे बड़ा आश्चर्य हुआ।

त्रिशूल और पिंडी

मेघा बाबा को दो स्थानों पर स्नान कराया करता था। प्रथम वह बाबा को मसजिद में स्नान कराता और फिर वाड़े में नानासाहेब चाँदोरकर द्वारा प्राप्त उनके बड़े चित्र को। इस प्रकार यह क्रम १२ मास तक चलता रहा।

बाबा ने उसकी भक्ति तथा विश्वास दृढ़ करने के लिए उसे दर्शन दिये। एक दिन प्रातःकाल मेघा जब अर्द्ध निद्रावस्था में अपनी शैया पर पड़ा हुआ था, तभी उसे उनके श्रीदर्शन हुए। बाबा ने उसे जागृत जानकर अक्षत फेंके और कहा कि "मेघा! मुझे त्रिशूल लगाओ।" इतना कहकर वे अदृश्य हो गये। उनके शब्द सुनकर उसने उत्सुकता से अपनी आँखें खोलीं, परन्तु देखा कि वहाँ कोई नहीं है; केवल अक्षत ही यहाँ-वहाँ बिखरे पड़े हैं। तब वह उठकर बाबा के पास गया और उन्हें अपना स्वप्न सुनाने के पश्चात् उसने उन्हें त्रिशूल लगाने की आज्ञा माँगी। बाबा ने कहा कि "क्या तुमने मेरे शब्द नहीं सुने कि मुझे त्रिशूल लगाओ। वह कोई स्वप्न तो नहीं, वरन् मेरी प्रत्यक्ष आज्ञा थी। **मेरे शब्द सदैव अर्थपूर्ण होते हैं, थोथे-पोचे नहीं।**" मेघा कहने लगा कि आपने दया कर मुझे निद्रा से तो जागृत कर दिया है, परन्तु सभी द्वार पूर्ववत् ही बन्द देखकर मैं मूढ़मति भ्रमित हो उठा हूँ कि कहीं स्वप्न तो नहीं देख रहा था। बाबा ने आगे कहा कि "**मुझे प्रवेश करने के लिए किसी विशेष द्वार की आवश्यकता नहीं है। न मेरा कोई रूप ही है और न कोई अन्त ही। मैं सदैव सर्वभूतों में व्याप्त हूँ। जो मुझ पर विश्वास रखकर सतत मेरा ही चिन्तन करता है, उसके सब कार्य मैं स्वयं ही करता हूँ और अन्त में उसे श्रेष्ठ गति देता हूँ।**" मेघा वाड़े को लौट आया और बाबा के चित्र के समीप ही दीवाल पर एक लाल त्रिशूल खींच दिया। दूसरे दिन एक रामदासी भक्त पूने से आया। उसने बाबा को प्रणाम कर शंकर की एक पिंडी भेंट की। उसी समय मेघा भी वहाँ पहुँचे। तब बाबा उनसे कहने लगे कि देखो, शंकर भोले आ गये हैं। अब उन्हें सँभालो। मेघा ने पिंडी पर त्रिशूल लगा देखा तो उसे महान् विस्मय हुआ। वह वाड़े में आया। इस समय काकासाहेब दीक्षित

स्नान के पश्चात् सिर पर तौलिया डाले 'साई' नाम का जप कर रहे थे। तभी उन्होंने ध्यान में एक पिंडी देखी, जिससे उन्हें कौतूहल-सा हो रहा था। उन्होंने सामने से मेघा को आते देखा। मेघा ने बाबा द्वारा प्रदत्त वह पिंडी काकासाहेब दीक्षित को दिखाई। पिंडी ठीक वैसी ही थी, जैसी कि उन्होंने कुछ घड़ी पूर्व ध्यान में देखी थी। कुछ दिनों में जब त्रिशूल का खींचना पूर्ण हो गया तो बाबा ने बड़े चित्र के पास (जिसका मेघा नित्य पूजन करता था) ही उस पिंडी की स्थापना कर दी। मेघा को शिव-पूजन से बड़ा प्रेम था। त्रिपुंड खींचने का अवसर देकर तथा पिंडी की स्थापना कर बाबा ने उसका विश्वास दृढ़ कर दिया।

इस प्रकार कई वर्षों तक लगातार दोपहर और सन्ध्या को नियमित आरती तथा पूजा कर सन् १९१२ में मेघा परलोकवासी हो गया। बाबा ने उसके मृत शरीर पर अपना हाथ फेरते हुए कहा कि "यह मेरा सच्चा भक्त था।" फिर बाबा ने अपने ही खर्च से उसका मृत्यु-भोज ब्राह्मणों को दिये जाने की आज्ञा दी, जिसका पालन काकासाहेब दीक्षित ने किया।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ॥

● ● ●

सप्ताह पारायण : चतुर्थ विश्राम